क्रोध के दो रूप

- श्री श्री रवि शंकर

क्या आपको पता है कि आपको क्रोध क्यों आता है? आपको क्रोध किसी दुर्बलता के कारण आता है। जब आप कुछ करना चाहते हैं और आप वह नहीं कर पाते, तो आपको वह क्रोध काम न कर पाने की विवशता से आता है। अगर आप स्वयं को शक्तिशाली और समर्थ समझते हैं तो फिर आपको क्रोध क्यों आयेगा? आप कभी एक चींटी या मक्खी से क्रोधित नहीं होंगे। आप कभी अपने से कम सामर्थ्यवान पर क्रोध नहीं करेंगे। हम अपने से बड़े और शक्तिशाली पर क्रोध करते हैं। हमें क्रोध की अनुभूति तब होती है जब कोई चीज़ हमारे सामर्थ्य और कौशल से परे होती है। हमें क्रोध तब भी आता है जब कोई हमारी बात नहीं मानता। क्रोध तब पैदा होता है जब हम सोचते हैं कि हमारे द्वारा कहे शब्द हमसे ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। इसलिए क्रोध जब पैदा होता है तब वह कष्ट का कारण होता है। लेकिन तब भी कभी-कभी क्रोध का प्रदर्शन आवश्यक होता है। दिखावे के क्रोध को एक अस्त्र की तरह प्रयोग करना चाहिए। इसलिए आप बाहर से क्रोध भले ही दिखायें लेकिन आप अंदर से शांत और अडिग रहें। इस क्रोध से आपका रक्तचाप नहीं बढ़ेगा, और न ही आप अन्दर से हिले हुए होंगे और न ही लाल पीले होंगे। आपने अक्सर देखा होगा जब कोई माँ अपने बच्चे को डाँटती है तो उसी समय वह अपने पति को देखकर मुस्कुराती है। यह क्रोध उसे न तो परेशान करेगा ना ही उसे सिर दर्द देगा। यह उसकी नींद भी नहीं खराब करेगा। इस प्रकार का क्रोध प्रदर्शित करना सही है। ऐसा हमें क्यों करने की आवश्यकता है? क्योंकि कुछ लोग एक ही बात को १० बार भी दोहराने से नहीं समझ पाते हैं। इसलिए ग्यारहवीं बार आप को उनको गंभीर बनाने के लिये कुछ क्रोध दिखाना पड़ता है। किसी के हित के लिए क्रोध करना उचित है, न कि अपने स्वार्थ के लिये। वह केवल आपको कष्ट देगा। किसी के अपमानित करने पर क्रोधित होना केवल आपको ही कष्ट देगा, किसी अन्य को नहीं। यदि कोई गढ्ढे (खाई) में गिरने वाला हो और फिर भी चलता जाए तब उसे कष्ट से रोकने के लिये क्रोध करना वास्तव में लाभदायक है।

जो क्रोध "मैं", "मुझे" या "मेरा" से उत्पन्न है वह कष्ट और निराशा पैदा करता है। जब आप को लगता है कि कोई मूर्खता कर रहा है तब आप उसे सुधारने के लिये यदि क्रोध करते हैं तो वह क्रोध लाभदायक है। एक क्रोध वह है जो पूर्ण सजगता के साथ अभिव्यक्त किया जाता है। दूसरे प्रकार का वह है जो बिना सजगता के अज्ञानवश किया जाता है।

क्रोध अनुभव करने के ठीक पहले आपके शरीर में संवेदनायें होने लगती हैं। जैसे आपके सिर की चोटी, माथे या सर के पीछे झंझनाहट महसूस हो सकती है या आपकी गर्दन या कन्धों के आसपास में अकड़न लग सकती है। उसी क्षण में इन सारी अनुभूतियों के प्रति सजग होना एक कला है। जब आप उन सभी अनुभूतियों के प्रति सजग होने के आदी हो जाते हैं तो आप क्रोध पर सरलता से नियन्त्रण पा सकते हैं। इसलिए ध्यान करना अति आवश्यक है। क्रोध के नियन्त्रण के लिए ध्यान के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। ■

काँच की दीवार

- नीलम मलकानिया

गाड़ी से उतरते ही जिंगल ने अपना चश्मा और स्कार्फ़ सही किया और जल्दी से उस अनजान इलाक़े के पुराने रेस्त्रां में दाख़िल हुई ही थी कि ठीक पीछे एक जानी-पहचानी आवाज़ हवा का सिरा पकड़े उसके कानों से होती हुई दिल के उसी काई लगे कोने में उतर गई जहाँ कुछ साल पहले उसे दफ़्न किया था।.....उफ़्फ़ आवाज़ें कभी नहीं मरतीं..।

"मिट्ठू.. अ..मालती...Sorry....जिंगल! ऊपर भीड़ नहीं है.. आओ।"

गहरी साँस छोड़कर सीने का बोझ हल्का करते हुए वो सुहास को देखे बिना घूमी और उसकी परछाई सी पहली मंज़िल पर चली गई। ऊपर सिर्फ़ दो ही लोग बैठे थे और अदरक की महक वाली देसी चाय सुड़क रहे थे.. पास की टेबल पर फुसफुसाहट कुछ तेज़ हुई और उनकी ओर कुछ शब्द उछाले गए।

"अरे भाई! या तो वोई मैड्डम है ना, टी वी वाली, 'मन की अवाज' शो वाली, जिंगल परधान?"

"हाँ भाई. ओ...राम-राम मैड्डम जी! बडे भाग म्हारे, जो तम म्हारे गाँव पधारे।"

जिंगल ने उन्हें देखा और होंठों के सिरे को एक ओर खींचकर मुँह दूसरी तरफ घुमा लिया और फिर से अपनी अलग दुनिया में खो गई। सुहास इस मुस्कान का मतलब जानता था..उसने अनमने मन से पूछा..

"कहीं ओर चलें क्या?"

"नहीं ज़्यादा समय नहीं है, कैमरा यूनिट बस कुछ सीन लेने के लिए ही आई है पास में..."

"हम्म.. कब जा रही हो?"

"अगले महीने 28 को"

"पहले तो यकीं हीं नहीं हुआ था कि तुमने ख़ुद फ़ोन किया... कितने सालों के लिए जा रही हो"?

"दो साल.."

उनके बीच एक लम्बी चुप्पी फिर से बहने लगी।

"कब तक चुप रहोगी..."

"....."

"जब पहली बार तुम्हें रश्मि की पार्टी में देखा था, तब भी तुम इसी तरह बैठी हुई थीं, एक ख़ामोश मुस्कान ओढ़े."

सुहास बीती घड़ियाँ फिर से जी रहा था और लगातार बोलता ही जा रहा था।

"सुनो, क्या अब भी तुम रातों में सहमकर जाग जाती हो?''

"....."

"कितने साल हो गए तुम्हारी हँसी की खनक सुने...बस टी.वी. पर देखता रहता हूँ तुम्हें। काँच की दीवार होती है हमारे बीच में मिट्ठू।

इससे पहले कि सुहास का दिया नाम 'मिट्ठू' जिंगल के आस-पास की हवा में मिठास घोलता, उसने तपाक से रूखे और चुभते अंदाज़ में कहा..

"शादी कर लो तुम"

सुहास को जैसे एक ठंडी लहर ने कचोट दिया। वो संभलते हुए बोला..."दुबली हो गई हो तुम। जर्मनी में कैसे रहोगी अकेली?... सब तैयारी हो गई क्या?"

"सुहास एक बार में एक बात पूछो न"

"सच कहूँ तो कुछ भी नहीं पूछना मुझे..तुम्हें सामने देखकर.. दिमाग़ अपनी रफ़्तार से दौड़ रहा है और दिल अपनी रफ़्तार से... बस नज़र भर देखना है तुम्हें।"

नज़र भर देखना है तुम्हें...इस एक लाइन ने दोनों को फिर से उस अंधेरी और काली रात में पहुँचा दिया था, जिसने उन दोनों के रिश्ते के जुगनू छिपा दिए थे।..

चार साल पहले दोनों मिले थे। अपनी संवेदनशीलता से सुहास ने एक ख़ास जगह बना ली थी मालती की दुनिया में।...उस शाम मालती को एक ज़रूरी मीटिंग में जाना था। उसके दूसरे कहानी संग्रह को एक पुरस्कार के लिए चुना गया था। उभरती कथाकार... सबसे कम उम्र की विजेता। बहुत ख़ुश थी मालती। मीटिंग उसके घर से काफ़ी दूर थी।.. रात गहराती जा रही थी और उसकी झालर वाली जालीदार ब्लैक ड्रेस ने उसे और भी रंगत दे दी थी। निखरा सा कालापन था माहौल में। अपनी ही धुन में उड़ती और सपने बुनती मालती को जब सुहास ने घर पहुँचाया तो बाहर तेज़ आँधी के साथ बारिश शुरू हुई और लाइट गुल हो गई थी। ओह! दिल्ली अचानक एक गाँव सी हो गई थी लाइट जाते ही और उस पर मैट्रो का कंस्ट्रक्शन..रास्ते बदले हुए थे और गड्ढो भरे भी.. मालती ने सुहास को ये कह कर रोक लिया था कि आनंदविहार से कहाँ नांगलोई तक जाओगे भीगते हुए।

एक coffee और ख़ूब बातें..मालती का गुनगुनाना और अपनी किताब को लेकर प्लानिंग करना। किसी ज़रूरी लेख का फ़ाइनल ड्राफ़्ट भी तैयार कर रही थी साथ-साथ। सीली हवा में लिपट कमरे में दाख़िल होते फुहारों के छींटे, खुली खिड़की, टॉर्च की धीमी रोशनी में होठों के बीच पैन दबाए कुछ सोचती मालती और उसके लिए सुहास के दिल में बेपनाह धड़कता कुछ... दिमाग़ पर दिल हावी होने लगा..मन के अथाह सागर से कुछ निकलकर शरीर के भूगोल मे क़ैद होने लगा था, सुहास के बदन की तरंगे गाढ़ी होने लगीं और साँसों में एक पूरी रात भरकर सुहास ने मालती को खींचकर सीने से लगाते हुए कहा था "पास आओ, नज़र भर देखना है तुम्हें"। जैसे ही सुरुर भरा एक मुलायम अहसास होश पर हावी हुआ..तड़ाक..

मालती का ज़ोरदार झापड़, फड़कते हुए होंठ और ग़ुस्से में काँपता शरीर सुहास की समझ में नहीं आया.. ये क्या हुआ अचानक?.. क्या उसने जल्दबाज़ी की?..नहीं तो?.. क्या उनके बीच ये स्वाभाविक नहीं?.. तो फिर क्या वजह है..?

मालती उसके लिए पहेली तो थी ही पर अब रहस्य भी बन गई थी..उस रात के बाद कितनी मनुहार के बाद तैयार हुई थी उससे मिलने के लिए और वो भी पूरे 15 दिन बाद...

"मेरी ग़लती क्या है मिट्ठू...क्यों ऐसे रिएक्ट कर रही हो.. कुछ तो बताओ..ऐसे तो मैं अपने ही सवालों में उलझ कर पागल हो जाऊँगा।....डॉट इू दिस विद मी..प्लीज़"

बहुत मिन्नतों के बाद नुकीली यादों की उस बंद कोठरी के किवाड़ मालती ने पहली बार खोले थे किसी के लिए...7 साल की उम्र में सड़क दुर्घटना में माँ-बाप गवाँ देने वाली बच्ची को उसके चाचा हिसार से अपने साथ पानीपत के एक गाँवनुमा क़स्बे में ले आए और चाची की झोली में डाल दिया था।..चाची ने कोई दुश्मनी नहीं निभाई तो ख़ास दोस्ती भी नहीं रखी।

दिन अपनी रफ़्तार से गुज़रने लगे... मालती रातों को नींद से जागकर रोने लगती। चाचा का अनुभव कुछ इस रूप में काम आया कि अनाथ को माँ-बाप की याद सताती होगी शायद। मालती एक गोले में खोई रहती जिसके बाहर-भीतर कुछ भी नहीं था।.. वो गोला कहीं भी उसकी आँखों के सामने आ जाता.. स्कूल में, घर में.. खाना खाते समय.. सोते समय। चाची का सामान्य ज्ञान कुछ झाड़ फूँक के रूप में सामने आया था और रिश्तेदारों का मनोरोगी के ठप्पे के साथ।

पीड़ा के साल बढ़ते गए और मालती का संघर्ष भी। छटपटाहट ने हाथ में कुछ रंग थमा दिए थे.. एक दिन एक चित्र बनाया और उस पर ख़ूब आँसू बरसाए। फिर चित्र किताबों में से कहीं ग़ायब हो गया था..अचानक चाची के चाँटे.."बेशर्म! दस बरस की हुई नहीं और ये सब.. कहाँ देखा ये सब...बोल.. निकल जा घर से.. मेरी भी बेटियाँ है.. उन्हें बिगाड़ना नहीं है मुझे..अरे, देखो जी क्या गुल खिला रही है तुम्हारी ये भोली लाडो.. ब्याहता औरत के कान काटे ये तो.. छी.छी.छी"

चाचा जब कभी मालती के सिर पर हाथ रखते थे तो उसकी आँखों की दहशत को देखकर हैरान रह जाते थे। उस दिन कुछ उबला था मालती के मन में जो काग़ज़ पर उतर आया था। वो चाचा की सामाजिक समझ थी या ख़ून की पूकार..या फिर दो बेटियों का बाप होने की संवेदनशीलता...चाचा ने तुरंत ही बिखरे हुए बहुत से सूत्र जोड़ लिए थे आपस में।.. चित्र से चिपकी हुई आँसुओं की सूखी बूंदें..मालती का रातों में काँपते हुए जाग जाना...सबसे दूर-दूर रहना और हर समय चेहरे पर एक दहशत लिए फिरना। चाचा ने तुरन्त उसकी मोटी सी डायरी भी पढ़ी जिसमें वो अपने अधकचरे भाव दर्ज करती रहती थीं। इसके बाद तो चाचा की बची हुई शंका भी उड़नछू हो गई। दस साल की कच्ची पैंसिल ने औरत-मर्द के रिश्ते को काग़ज़ पर उतारा था..कैसे और क्यों?

पता चला कि समय ने चुपके से मालती के साथ एक और मज़ाक कर दिया था। उस अनाथ बच्ची को चाची का जवान भाई गुड़िया देकर शरीर का विज्ञान समझाना शुरु कर चुका था। वो मालती को न जाने कब से समझा रहा था कि "चाचा, मामा, अंकल, मौसा...सब आदमी ही हैं और सब यही करते हैं.. बस बताते नहीं.. अगर तुमने किसी से कुछ कहा तो तुम्हारी जीजी घर से निकाल देंगी। सड़क पर रहना पड़ेगा और हर कोई यही करेगा।..अच्छे बच्चे चुपचाप अंकल की बात मानते हैं और किसी से कुछ नहीं कहते।..."

चाचा ने अपनी सरकारी नौकरी और उस छोटे से क़स्बे में अपनी बड़ी सी इज़्ज़त की ख़ातिर पुलिस केस नहीं बनने दिया था। अपना घर भी बचाना था तो चाची के सामने कुछ नहीं बोला।..उस दिन के बाद चाची की मेहरबानी से मोहल्ले की औरतें हर किसी को बता रही थीं।

"अरी जिज्जी! या इती सी छोरी किसी के साथ... हाय बेसरम"

"अरी सुन, किसी आदमी का इस छोरी के साथ...हेहेहे"

"अरी पता ना किस-किससे हिली है..लो जी और सुणो.."

चाची का भाई तो रफ़ुचक्कर हो चुका था पर मालती अब मनोरंजन का साधन थी। उसकी पीड़ा हर गली नुक्कड़ पर पहुँच गई थी। घर से स्कूल आते-जाते उसके शरीर की आँखों से ही मैडिकल जाँच कर लेते लोग। बहुत से मनचले अपनी छाती तक आती मालती से पूछने लगे थे...

'क्या-क्या जाणे है री तू?'

'अरी सुण! बहुत मन करे है क्या तेरा?

`मेरी गैल चलेगी के?`

चाचा ने हर परेशानी का एक हल निकालते हुए उसे रिश्ते की एक मौसी के घर भेज उसकी पढ़ाई का सारा ख़र्च उठाने का भी वादा किया था। ये भी समझाया था कि जो हुआ उसे भूल जाए। आने वाले कल पर गुज़रे कल का बोझ ना पड़ने पाए.. यही उसके लिए अच्छा है।..

उस मौसी ने मालती को सहेजा। कोमल कच्चे घड़े को फिर से नया आकार दिया..तराशा..। जवान विधवा मौसी ने अपने हक़ की लड़ाई ख़ुद लड़ी थी तो मालती को नई चुनौती के रूप में पूरे दिल से स्वीकार किया और भरपूर प्यार दिया। बारहवीं करने तक स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न मुद्दों पर लेख, कविताएँ और कहानियाँ लिखकर मालती ने जिंगल नाम से एक छोटा सा शब्द संसार रच डाला था। बिन माँ-बाप की बच्ची ने दुनिया का भयंकर रूप बचपन में ही देख लिया था तो उसके कसैले स्वाद ने एकांतप्रिय बना दिया था।.. कुछ बातें रात भर उसकी नींदों को कड़वा कर जाती थीं... रेंगते हाथ बड़ी मालती को भी नहीं छोड़ते थे और सपनों में आकर उसे दबोच लेते थे।.. बारहवीं के बाद हरियाणा से दिल्ली आकर बी.ए. करने का मौक़ा मिला तो मौसी ने तुरन्त हामी भर दी और कहा कि अपने आकाश के कोने खोल दो.. जाओ पंख पसारो...।

सुहास ने मालती के मुँह से जब उसका बचपन सुना था तो एक पल को ऐसा लगा था जैसे किसी ने उसके ही शरीर को भरे बाज़ार उघाड़ दिया हो..पहली बार उसकी मिट्ठू की पीड़ा और उसकी ख़ामोशी पनीली हो सुहास के सामने बही थी.. तब उसे समझ आया था कि क्यो मालती के मन में किसी की छुअन की चाह नहीं थी और क्यों उसने उन दोनों के प्यार को एक रुहानी अंदाज़ दिया हुआ था... यही उनकी आख़िरी मुलाक़ात थी। उसके बाद सुहास की बहुत कोशिशों के बाद भी मालती ने मिलना नहीं चाहा और सुहास को लगा कि ज़बरदस्ती से बात और बिगड़ जाएगी। उनके बीच गुज़रे हुए दिन अपना अधिकार मज़बूत करते रहे और आज तीन साल के बाद दोनों आमने-सामने थे..

मोबाइल की घंटी ने दोनों को पिछली मुलाक़ात से बाहर निकाल फिर उसी रेस्त्राँ में ला पटका..

"मुझे जाना है।"

"मैं दिल्ली आ सकता हूँ तुमसे मिलने?"

"नई-नई पोस्टिंग है यहाँ तुम्हारी। काम पर ध्यान दो। ऑफ़िसर ही नदारद रहेगा तो स्टाफ़ क्या काम करेगा।...जाने से पहले एक बार साफ़-साफ़ कहना चाहती थी कि मेरा इंतज़ार करना बंद करो और आगे बढ़ो।"

पर सुहास के लिए आगे बढ़ने का मतलब अकेले बढ़ना नहीं था शायद।

"तुम कब अपनी घुटन से बाहर निकलोगी"

"मुझे कोई बात नहीं करनी इस बारे में.."

"पर मुझे तो करनी है..प्लीज़ यार.. तुम दोहरा जीवन जी रही हो..अपने आस-पास यूँ दीवारें खड़ी मत करो..भूल जाओ न वो सब।...लोग तुम्हें बहुत मज़बूत लड़की मानते हैं और तुम हो भी।.

अब यूनीसेफ ने चुना है तुम्हें जर्मनी में अपने नए प्रोजेक्ट के लिए।"

"जाना है मुझे.." मालती के शब्द फिर से सख़्त हो गए।

"मैं अपनी बातों से तुम्हें दुख नहीं पहुँचाना चाहता मालती, पर ये भी सच है कि मैं तुम्हें खोना भी नहीं चाहता.." सुहास की आवाज़ भीग गई अचानक।..

कार की स्पीड के साथ मालती सुहास से दूर जा रही थी। उनके बीच का रास्ता लंबा होता जा रहा था..मालती के सामने फिर से एक गोला आ गया था...सुहास समझ नहीं पा रहा था कि जिस बच्ची ने बचपन जीया ही नहीं... उसे वो भविष्य के सुनहरे सपने कैसे दिखाए...क्या मालती कमज़ोर है या दोग़ली या फिर असंतुलित? नहीं! शायद उसके लिए कोई शब्द नहीं है सुहास के पास क्योंकि उसकी पीड़ा और परिस्थितियाँ सुहास ने नहीं जी हैं.।

समय ठहर सा गया था और उसी एक बड़े से गोले में समाता जा रहा था जिसका ओर-छोर ना तो मालती के पास था और ना ही सुहास के पास.. वो तड़पकर रह गया...मालती कितने लोगों की लड़ाई लड़ती है, कोई क्यों नहीं सोचता कि इन सबमें उसे क्या मिलता है....`मन की आवाज़` शो की हर स्टोरी में किसी का दर्द उजागर करना और दोषी को सामने लाना, यही करती है न वो।...पर. उसके दोषी को तो चुपचाप बचा लिया गया था, कोई नहीं लड़ा था उसकी तरफ़ से और शायद यही है वो नासूर है जो उसे चैन से नहीं सोने देता। किसी की करतूत को मालती ने पता नहीं किस-किस रूप में भोगा है। मज़ाक़ वो बनी, उंगलियाँ उस पर उठाई गईं, दवाइयों का सहारा उसे लेना पड़ा, कोई भी शिक़ायत करने से पहले दूसरे के अहसानों के बारे में सोचना पड़ा और वो आदमी जिसने उसके बचपन पर डाका डाला, वो तो कहीं नीतिकथाएँ सुना रहा होगा दूसरों को। भूल जाओ वो सब कह देने से शायद वो दर्द और भी नया हो जाता है मालती के लिए और उसका ग़ुस्सा अंदर ही अंदर उसे खाने लगता है। नहीं.. मालती का मन कुछ भी भूलने को तैयार नहीं है.. पर इस तरह तो वो ख़ुद को सज़ा दे रही है।

सुहास के मन में अचानक कुछ कौंधा।...सज़ा?....हाँ सज़ा.. यही एक रास्ता है शायद... जब कुछ दर्द ऐसे होते हैं जो कभी पुराने नहीं होते तो फिर कोई अपराध कैसे पुराना हो सकता है? सुहास ने ख़ूब सोचा। ये सिर्फ़ उस आदमी से लड़ाई नहीं है बल्कि उस सोच के प्रति भी लड़ाई है जहाँ एक ही दिलासा है कि भूल जाओ सब। उस आदमी को पर्दे से बाहर तो लाना ही होगा जिसने मालती को इतनी जटिल बना दिया है कि आज भी वो अपनी दुनिया में किसी पुरुष की उपस्थिति नहीं चाहती। सुहास ने तय किया कि मालती अपने साथ जर्मनी तक कोई बोझ लेकर नहीं जाएगी। अगले महीने 'मन की आवाज़' शो का आख़िरी एपिसोड है। इस अंतिम एपिसोड में जिंगल की अपनी कहानी होगी और वो सब लोग उसके साथ होंगे जिनकी लड़ाई जिंगल प्रधान ने लड़ी है। सज़ा और अपराध से अलग ये सबसे पहले उसके बचपन का सम्मान होगा। सुहास चाहता था कि जिंगल मीठी नींद सोए, एक दम बेख़बर और बिना किसी दहशत के। वो जिंगल का इंतज़ार करता रहा है, हारा नहीं है, आगे भी करेगा। ऑफ़िस पहुँचते ही जिंगल का दर्द साझा करने की कोशिश में एक बड़ा फ़ैसला करके सुहास ई-मेल लिखने लगा... जिंगल के चैनल हैड के नाम। ■

किसी को उसकी योजनाओं में हतोत्साह नहीं करना चाहिए। आलोचना की प्रवृत्ति का पूर्णतः परित्याग कर दो। जब तक वे सही मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं; तब तक उन्के कार्य में सहायता करो; और जब कभी तुमको उनके कार्य में कोई ग़लती नज़र आये, तो नम्रतापूर्वक ग़लती के प्रति उनको सजग कर दो। एक दूसरे की आलोचना ही सब दोषों की जड है। किसी भी संगठन को विनष्ट करने में इसका बहुत बडा हाथ है।

किसी बात से तुम उत्साहहीन न हो; जब तक ईश्वर की कृपा हमारे ऊपर है, कौन इस पृथ्वी पर हमारी उपेक्षा कर सकता है? यदि तुम अपनी अन्तिम साँस भी ले रहे हो तो भी न डरना। सिंह की शूरता और पुष्प की कोमलता के साथ काम करते रहो।

- स्वामी विवेकानन्द

काल

- सिद्धि

सँवार रहे थे कुछ युवा भविष्य,
बन रहे थे डॉक्टर ख़ुशियाँ बाँटते।
माँ झुला रही थी शिशु बाँहों में,
झूमती थी उराकामी नदी देख उन्हें।
मदर मैरी मुस्काती थीं दया से,
मज़बूत लगते थे पत्थर चर्च के।
पहाड़ियाँ नागासाकि की सुरक्षा करती थीं,
जीत न पाया था कभी सरहद कोई।
शिरोयामा स्कूल की हरी दूब पर,
छात्र खेलते थे बस्ते लिए।
आसमां में गूँजी थी चीख़ जो,
धरती ने नहीं चाही थी कभी वो।
एक शैतान लपका था उसी दौर में,
मशरूम से बरसी थी आग कई रोज़ तक।
उधड़ गई थी चमड़ी, जल गए थे बाल,
फ़ैट मैन ने फैलाया था विकिरण का जाल।
ढह गए थे घर, ढाँचों को थी अपनों की खोज,
धरती को चीर निकली थी कीड़ों की फ़ौज।
प्यासी बच्ची ने पिया था ज़हर, पानी पर तैरता,
भस्म हो गए थे लोग, रह गईं थीं परछाइयाँ।
मौत थी ये नए अंदाज़ की,
आहट जिसकी पता न चल सकी।
70 साल पहले आसमां से उतरा था काल,
थम गया था समय नागासाकि में।
बाद 1945 दुनिया में आए जो,
सुनी कहानियाँ, नाम साथ सुने दो।
मैं नागासाकि तुम कुछ भी कहो,
हिरोशिमा से पहले चाहे नाम कोई और रख दो।
पर संग्रहित वो पिघली हड्डियाँ काँच संग,
पूछती हैं क्या मुस्कुरा सकते हो मुझे देख कर?
वो दर्द से एक वृद्ध बिलखता,
माँ ढोती पत्थर सी शव बच्चे का!
कैसे करोगे सामना इस सच का,
उजड़ गया था शहर हँसता-खेलता!
मौत का पक्ष लेता हर तर्क बेकार है,
हिबाकुशा की आज भी यही पुकार है।
इतिहास करेगा सच बस यही बयाँ,
मारा था इंसान ने, मर गया था इंसान।

शिक्षक

- सुनील शर्मा

कल का भविष्य है जिस के हाथों में,
जीवन का तत्व है जिस की बातों में,
जो सूखे फूलों को भी प्रेम से सहलाता है,
नवदीप प्रज्वलित करने वाला
वह वीर ही शिक्षक कहलाता है।

सूर्य की रश्मियाँ जब प्रकाश फैलाती हैं,
अंधेरा कहीं दूर तक नज़र नहीं आता है,
रौशनी हो चारों ओर तो कुछ डर नहीं,
जब दिल का अंधेरा दूर हो जाता है।

हर दिल के सूने अंधेरे को
ज्ञान के प्रकाश से जो दूर भगाता है,
नवदीप प्रज्वलित करने वाला
वह वीर ही शिक्षक कहलाता है।

एहसास

- सारिका अगरवाल

वोह भीगी मिट्टी की खुशबू ,
वोह चिड़ियों की चहचाहट ,
वोह बदलते हुए मौसम,
और पेड़ों के पत्तों की सरसराहट,
कहाँ खो गए वोह एहसास .....

वोह किताबों की खुशबू ,
और उनके पन्नों को पलटने का सुख..
घोसलों में बैठे उन परिंदों को
टुकुर टुकुर निहारने का एहसास...
उस छिपी हुई बिल्ली से उस पक्षी को बचाने का एहसास,
कहाँ खो गये वोह एहसास ....

चारों तरफ झुके हुए वोह सर
उन फोनों में ,
जहाँ खो गये यह सब एहसास
और रह गए कोरे अल्फ़ाज़...!!

आलोक श्रीवास्तव की कविताएँ

बाबू जी

घर की बुनियादें, दीवारें, बामों-दर थे बाबूजी,
सबको बाँधे रखने वाला, ख़ास हुनर थे बाबूजी।

तीन मुहल्लों में उन जैसी क़द-काठी का कोई न था,
अच्छे-ख़ासे, ऊँचे-पूरे, क़द्दावर थे बाबूजी।

अब तो उस सूने माथे पर कोरेपन की चादर है,
अम्माजी की सारी सजधज, सब ज़ेवर थे बाबूजी।

भीतर से ख़ालिस जज़्बाती, और ऊपर से ठेठ-पिता,
अलग, अनूठा, अनबूझा-सा, इक तेवर थे बाबूजी।

कभी बड़ा-सा हाथ ख़र्च थे, कभी हथेली की सूजन,
मेरे मन का आधा साहस, आधा डर थे बाबूजी।

अम्मा

धूप हुई तो आँचल बनकर कोने-कोने छाई अम्मा,
सारे घर का शोर-शराबा, सूनापन, तनहाई, अम्मा।
सारे रिश्ते- जेठ-दुपहरी, गर्म-हवा, आतिश, अंगारे,
झरना, दरिया, झील, समंदर, भीनी-सी पुरवाई अम्मा।
उसने ख़ुदको खोकर मुझमें एक नया आकार लिया है,
धरती, अंबर, आग, हवा, जल जैसी ही सच्चाई अम्मा।
घर में झीने रिश्ते मैंने लाखों बार उधड़ते देखे,
चुपके-चुपके कर देती है, जाने कब तुरपाई अम्मा।
बाबूजी गुज़रे आपस में सब चीज़ें तक़्सीम हुईं, तब-
मैं घर में सबसे छोटा था, मेरे हिस्से आई अम्मा।

एक बेहतर सुबह के इंतजार में

- गीता श्री

कब से उस सुबह का इंतजार है, जिसके बेहतर होने से
जाती हुई सांसे लौट सकती हैं,
भय से कांपती हुई परछाईं थिर हो सकती है
जख्मों से रिसता मवाद सूख सकता है खुली हवा में
वह अपनी मुठ्ठियों से आजाद कर सकता है पिछली बारिश को
उल्लास से भर कर दूध वाले से ले सकूंगी दूध का पैकेट
धोबी को दे सकूंगी अपनी पोशाकें
कि वह इस्तरी करके किस्मत की सलवटें खत्म कर सके
झाड़ू पोछा वाली छमकती हुई आए तो पहली बार मुझे जंचे
कि मैं उसकी पगार उसे वक्त पर देकर उसकी मुस्कुराहट को
अपने हिस्से का इनाम मान सकूं,
सब्जीवाले को किलो के भाव से आर्डर देकर मस्त हो सकूं
कि चार दिन की हो गई छुट्टी,
मैं रोज उदासी से भरी अपनी बच्ची को
रोज स्कूल जाते समय हाथ हिला कर बोल सकूं-हैव ए नाइस डे,
मेड के लिए परेशान श्रीमती पांडे से पूछ सकूं उनका हाल
कि जरुरी हो तो मैं भेज दूं अपनी मेड,
सोसाइटी के गेट पर फोन करके गार्ड को हड़का सकूं कि क्या तमाशा है यहां कि कोई सुनता ही नहीं हमें
जैसे इन दिनों ईश्वर नहीं सुनता हमारी आवाजें,
हम चीखते बिलबिलाते रहते हैं सांतवीं मंजिल पर टंगे हुए
कि वह खुद ही किसी दर्द में डूबा हो जैसे,
मैं एक बार फिर लौटती हूं रोज के काम से,
क्या उसे शिकंजे और संदिग्ध ठहराए जाने का दर्द मालूम है
कोख की कैद के बाद क्या उसने कोई और कैद देखी है
क्या हवा कभी पूछ कर अंदर आती होगी।
किसी को डांटते वक्त उसे कभी मलाल हुआ होगा,
क्यों वह खुद को साबित करने की प्रतियोगिता में शामिल कर देता है,
किसी बेहतर सुबह के लिए रातों को दुरुस्त करना कितना जरुरी होता है,
हर रात मेरी नींद में आकर किसी उम्मीद में दम तोड़ती है
बेहतर होने की उम्मीद में कितनी अनमनी होती जाती है जिंदगी
कि हम अपने नुकीले पंजे से भी पीछा नहीं छुड़ा पाते और जख्मी करते और होते रहते हैं निरंतर...निरंतर....
कि कभी-कभी नैरंतर्य का न होना स्थगित होना कतई नहीं होता..।

जलती रहेगी आग

- विभा रानी

रबड़ की तरह खिंच जाती है दुनिया,
निश्चित और अनिश्चित के बीच!
मैं कभी इतनी नहीं थी उदास
घड़ी के पेंडुलम की तरह नहीं रही डोलती
किए समझौते-ताकि हरी-भरी बनी रहे
मेरे आस-पास की धरती!
रोई नहीं कि बचा रहे जीवन जल
बुझ सके प्यास जीवन की
इसी जल से!
अभी भी चाहती हूं रोना
एक बार जार-जार
फूट-फूटकर
बिलख-बिलखकर
मां आती है ऐसे में याद
ले जाती है सपनों की
गंदुमी चादर तले
और खिसका देती है परे
बिना मुझे अपनी गोद दिए
मां!
तुम इतनी निर्मम तो थी नहीं!
और मैं तो हूं तुम्हारी -कोर पोछू'
फिर ऐसा क्या किया मैंने, ओ मेरी प्यारी-प्यारी मां!